दैनिक भास्कर

Date:24-12-21

'भीड़ - न्याय' के खिलाफ भी कानून बनाना पड़ता है!

संपादकीय

समाजशास्त्र की अवधारणा है कि समय के साथ समाज बेहतर समझ पैदा करता है और लाठी-भैंस (मत्स्य न्याय) से संवर्धन करता हुआ संविधान में 'सम्मान से जीने के अधिकार को' न्यायिक विस्तार के साथ अनुच्छेद-21 में रखा जाता है। ऐसे में झारखंड भीड़-न्याय (या लिंचिंग) के खिलाफ कानून बनाने वाला देश का चौथा राज्य बनता है, जिसमें उन्मादी भीड़ किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को सरेआम पीट-पीट कर मार देती है। इसके पहले पश्चिम बंगाल, राजस्थान और मणिपुर भी ऐसा कानून बना चुके हैं। दो दिन पहले पंजाब में भीड़ ने दो अलग-अलग मामलों में युवाओं को पीट-पीट कर मार दिया था। हम कहां आ चुके हैं? क्या देश में कानून नहीं है कि कोई भी नागरिक कानून अपने हाथ में लेकर सजा देने लगे। क्या इसके लिए अलग से कानून बनाना पड़ेगा? यह कुछ ऐसा ही हुआ कि कोई चोरी कर रहा हो तो इस दौरान उसके द्वारा हिंसा करने पर दंडित करने के लिए अलग से कानून बने। इसमें चौंकाने की बात यह है कि एक राजनीतिक दल इस कानून का विरोध भी विधानसभा में कर रहा था। उसका आरोप था कि इसे एक वर्ग को खुश करने के लिए लाया गया है। अभी कुछ दिनों पहले सार्वजनिक मंच से भी कहा गया था कि कश्मीर में सामूहिक सोच में इतना 'सराहनीय' बदलाव आया है कि लोग स्वयं ही आतंकवादियों को 'लिंच' करने लगे हैं। पिछले कुछ समय से उन्मादी भीड़ कभी चोर को तो कभी किसी धार्मिक भावना पर ठेस के नाम पर लोगों को पीट-पीट कर मार देती है। चिंता यह है कि इन मामलों की न जांच पूरी हो पाती है और इंसाफ मिलना तो दूर की बात है।

Date:24-12-21

चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं की स्वायत्तता बनी रहनी चाहिए

शशि थरूर, (पूर्व केंद्रीय मंत्री और सांसद)

पिछले दिनों प्रधानमंत्री कार्यालय ने मुख्य चुनाव आयुक्त को तलब किया। इस कदम को प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रधान सचिव और मुख्य चुनाव आयुक्त सुशील चंद्रा (साथ में उनके दो डिप्टी) के बीच अनौपचारिक बैठक बताया गया।

पीएमओ के प्रधानसचिव के आदेश पर हुई बैठक को सिर्फ उचित प्रोटोकॉल तोड़ना नहीं कह सकते। यह संवैधानिक शक्तियों के विभाजन व स्वायत्त संस्थाओं पर कार्यपालिका के प्रभाव को लेकर गंभीर सवाल भी खड़ा करता है।

यह पहली बार नहीं है कि स्वायत्त संस्थाओं पर हमले के क्रम में चुनाव आयोग निशाना बना है। लगभग ईमानदार छवि वाले ईसी को 2017 में उस समय गंभीर झटका लगा, जब ईसी के एक प्रमुख ने सभी आसन्न चुनावों की तिथियां एक साथ घोषित करने की परंपरा का उल्लंघन किया। विपक्ष की चिंता यह है कि ताजा प्रकरण भी इसी तरह का हो सकता है। करीब 25 साल पहले आयोग ने एक आचार संहिता लागू की थी जो चुनाव की तिथियां घोषित होने के बाद वोटरों को लुभाने के लिए सरकारी खर्च पर रोक लगाती थी। गुजरात और केंद्र में सत्तासीन भाजपा ने गुजरात चुनाव से ठीक पहले अनेक मुफ्त योजनाओं की घोषणा की, जिसके बाद चुनाव आयोग पर यह दबाव पड़ा कि वह चुनाव की घोषणा को जितना हो सके उतना टाले। इस पर आयोग ने गुजरात के साथ ही चुनाव वाले राज्य हिमाचल प्रदेश में गुजरात से 13 दिन पहले चुनाव की घोषणा कर दी और इसकी वजह राज्य में बाढ़ सहायता की जरूरत को बताया, जबकि आचार संहिता ऐसा करने से रोकती नहीं है। पूर्व चुनाव आयुक्तों ने इसकी आलोचना की थी।

चुनाव आयोग द्वारा सरकार के विभाग की तरह काम करने को लेकर चिंता तब और गंभीर हो गई, जब आयोग द्वारा भाजपा को फायदा पहुंचाने के लिए दो साल पहले आम आदमी पार्टी के 20 विधायकों को तकनीकी आधार पर अयोग्य घोषित करने के फैसले को दिल्ली हाईकोर्ट ने कानून के विरुद्ध और प्राकृतिक न्याय के खिलाफ बताते हुए खारिज कर दिया। निष्पक्षता के लिए प्रशंसा पाने वाला और भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का संरक्षक कोई संस्थान कैसे खुद को ऐसी दुखद स्थिति में ला सकता है? इसका जवाब केंद्र की सत्ताधारी पार्टी के पास है। ताजा प्रकरण दोनों ओर की विफलता है।

यह उम्मीद की जाती है कि प्रधानमंत्री कार्यालय चुनाव आयोग पर अपने अधिकार का प्रयोग करने से बचेगा, वहीं आयोग से भी यह अपेक्षा की जाती है कि अपनी स्वायत्तता पर कायम रहता और पीएमओ के किसी भी आग्रह को ठुकरा देता।

आखिर चुनाव आयोग ऐसी संस्था नहीं है, जो पीएमओ या कार्यपालिका में किसी के आग्रह को मानकर अनुग्रहीत हो। पूर्व चुनाव आयुक्त एसवाय कुरैशी समेत अनेक जानकारों का कहना है कि ऐसी बैठक के अपरिहार्य होने पर कई प्रोटोकॉल का पालन करना चाहिए था। बेहतर होता कि पीएमओ की ओर से मुख्य चुनाव आयुक्त से जाकर मिलने का आग्रह किया जाता। जिन बातों पर स्पष्टीकरण चाहिए था, उन्हें लिखित में मांगा जाना चाहिए था। इन दोनों ही बातों को नजरअंदाज किया गया और इससे भी खराब यह है कि सरकार ने अब तक साफ नहीं किया है कि बैठक के दौरान किस मुद्दे पर बातचीत हुई।

इस तरह के प्रकरणों से सबसे बड़ा खतरा यह है कि लोगों का चुनाव आयोग जैसी स्वायत्त संस्थाओं में भरोसा खत्म होता है और ऐसा होने से लोकतंत्र के स्तंभ कमजोर होते हैं। जैसा कि मैंने अपनी पुस्तक 'द बैटल ऑफ बिलॉन्गिंग' में कहा है कि राजनीतिक दल और सत्ता तो आनी-जानी है, लेकिन लोकतंत्र का स्तंभ कही जाने वाली इन संस्थाओं की स्वतंत्रता, ईमानदारी और पेशेवरता उन्हें राजनीतिक दबाव से बचाने के लिए है।

Date:24-12-21

आधार के मामले में कभी भी ऐच्छिक जैसा कुछ नहीं होता!

रीतिका खेड़ा, (अर्थशास्त्री, दिल्ली आईआईटी में पढ़ाती हैं)

2009 में कांग्रेस की सरकार के दौरान, नंदन नीलेकणि ने आधार का प्रस्ताव रखा, तब इसका जोर-शोर से स्वागत किया गया। लेकिन इसकी मूल कल्पना में कई सवाल हैं। भारत में जहां पलायन इतने बड़े पैमाने पर होता है, क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति एक ही पते से जोड़ा जा सकता है? आधार में नामांकन-सुधार की प्रक्रिया ठेकेदारों के हाथों में है, वहां आश्चर्य की बात नहीं कि लोग मूल सेवाओं (जन्मतिथि-नाम में सुधार, पता अपडेट आदि) के लिए बिचौलियों के जाल में फंस जाते हैं।

आधार की कल्पना को 'बेचने' के लिए कहा गया कि देशवासियों के पास कोई भी पहचान पत्र नहीं। लेकिन आंकड़े दूसरी कहानी कहते हैं। आज भी आधार से देश की ज्यादा जनसंख्या के पास जन्म प्रमाण पत्र हैं। जानकारी के अनुसार कुल आधार में से एक प्रतिशत से कम ने 'इंट्रोड्यूसर' सिस्टम का प्रयोग किया (यह उनके लिए था जिनके पास और कोई पहचान पत्र नहीं)

आधार के समर्थन में एक और तर्क ये था कि कल्याणकारी सेवाओं में फर्जी नाम की वजह से भ्रष्टाचार हो रहा है। यह तथ्यों के विपरीत था। जन वितरण प्रणाली में भ्रष्टाचार जरूर था (आज भी है) लेकिन फर्जी नाम भ्रष्टाचार का बड़ा जरिया नहीं। सबसे ज्यादा अनाज की चोरी तब होती है जब लोग राशन लेने जाते हैं और वहां, हस्ताक्षर/मशीन में अंगूठा 20-25 किलो पर लगवाया जाता है, लेकिन कम दिया जाता है। इस तरह की चोरी को रोकने में आधार की कोई भूमिका नहीं।

फर्जी नाम बहुत कम संख्या में थे, तो इस जरिए से चोरी भी बहुत कम थी। इस 'चूहे' को पकड़ने के लिए आधार को अनिवार्य बना दिया गया है, जिसके चलते कल्याणकारी योजनाओं का घर जलने की स्थिति में है। आधार न बनवाने की स्थिति में (क्योंकि बीमारी की वजह से बिस्तर पर हैं या मशीन अंगुलियों के निशान नहीं ले रही आदि), आधार को सरकारी योजनाओं से न जोड़ पाने की स्थिति में या फिर अंगुलियों का सत्यापन फेल होने पर लाखों की संख्या में लोग हकों से वंचित हुए हैं।

नीति आयोग की एक रिपोर्ट में प्रधान मंत्री वंदना योजना में पाया कि 28% पेमेंट गलत खाते में चले गए हैं। पीएम किसान योजना का पैसा भी सरकारी लोगों के खातों में गलती से आ गया है। झारखंड में 2017 में लाखों लोगों के नाम पीडीएस से इसलिए काट दिए गए, क्योंकि उनके नाम के साथ आधार नहीं जुड़ा था।

सुप्रीम कोर्ट ने 2018 में कहा था कि आधार का उपयोग केवल कल्याणकारी योजनाओं के लिए हो, बच्चों को इससे बचाया जाए और निजी कंपनी इसे अनिवार्य रूप से नहीं मांग सकती। लेकिन सरकार ने इस सप्ताह संसद में एक ऐसा

बिल पारित किया है, जिससे अब वोट डालने के लिए भी आधार को वोटर आईडी से जोड़ना होगा। कहने के लिए कहा जा रहा है कि यह वॉलंटरी यानी ऐच्छिक है, लेकिन आधार के इतिहास से एक बात स्पष्ट है: वॉलंटरी यानी कंपल्सरी।

पिछले कई सालों से हमने आधार से हो रहे नुकसानों पर शोध किया है। लोगों से पूछा कि उन्हें आधार में सुधार करवाने में दिक्कत आई या पैसे खर्च करने पड़े, तो लगभग आधे हाथ खड़े हो जाते हैं। सब को हैरानी होती है कि कितने लोग उन्हीं की तरह आधार से त्रस्त हैं। हैरानी का कारण यह है कि आधार का प्रचार खूब जोरों से होता है, लेकिन इससे हो रहे नुकसान पर कभी-कभार ही खबर आती है- बच्चे को स्कूल में एडमिशन नहीं मिला, अस्पताल में दाखिले के लिए आधार मांगा गया, भूख से मौत हो गई, धोखाधड़ी इत्यादि। सक्षम वर्ग को कहीं जरूर सहूलियत हुई होगी (जैसे नई सिम लेने में)

आधार को वोटर आईडी से जोड़ना लोकतंत्र के लिए बड़ा आघात हो सकता है। इस तरह के किस्से पहले हो भी चुके हैं, जब बैडमिंटन खिलाड़ी ज्वाला गुट्टा जैसे 8% मतदाताओं ने पाया कि उनके नाम वोटर लिस्ट से गायब हो चुके थे। यदि वोटर लिस्ट में खोट है तो सरकार को इन्हें काटने के दूसरे उपाय ढूंढने चाहिए।

दैनिक जागरण

Date:24-12-21

अर्थव्यवस्था को बल देते प्रवासी भारतीय

डा. जयंतीलाल भंडारी, (लेखक एक्रोपोलिस इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट स्टडीज एंड रिसर्च, इंदौर के निदेशक हैं)

हाल में विश्व बैंक द्वारा जारी 'माइग्रेशन एंड डेवलपमेंट ब्रीफ' रिपोर्ट के मुताबिक विदेश में कमाई करके अपने देश में धन (रेमिटेंस) भेजने के मामले में भारतीय प्रवासी दुनिया में सबसे आगे रहे हैं। रिपोर्ट के मुताबिक 2021 में प्रवासी भारतीयों ने 87 अरब डालर की धन राशि स्वदेश भेजी है। यह धन राशि पिछले वर्ष की तुलना में 4.6 फीसद अधिक है। इसमें सबसे अधिक 20 प्रतिशत धन राशि अमेरिका से प्रवासी भारतीयों द्वारा भेजी गई है। पिछले छह-सात वर्षों में प्रधानमंत्री मोदी द्वारा प्रवासी भारतीयों के लिए किए गए विशेष प्रयासों से प्रवासियों का भारत के लिए सहयोग और स्नेह लगातार बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। प्रवासियों द्वारा विदेश में काम करते हुए कमाई का कोई भाग अपने मूल देश को बैंक या आनलाइन ट्रांसफर से भेजा जाता है तो उसे रेमिटेंस कहते हैं। वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों के प्रवासियों द्वारा 2021 में कुल 589 अरब डालर की राशि अपने-अपने देशों में भेजी गई है, जबकि 2020 में उनके द्वारा भेजी गई धनराशि 540 अरब डालर थी। प्रवासियों से धन प्राप्त करने में भारत के बाद चीन, मेक्सिको, फिलीपींस और मिस्न के नाम आते हैं। पिछले वर्ष कोरोना के कारण दुनिया के विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं के शिथिल पड़ने के कारण भारतीय प्रवासियों की आमदनी में बड़ी कमी आई थी। फिर भी आर्थिक मुश्किलों के बीच प्रवासियों द्वारा पिछले वर्ष भेजी गई 83 अरब डालर की बड़ी धनराशि से भारतीय अर्थव्यवस्था को बड़ा सहारा मिला था। चिंता और अनिश्चितता के दौर में फंसे देश को प्रवासी भारतीयों का हर तरह से साथ मिला था।

प्रवासी भारतीयों के साथ भारत के संबंधों को फिर से ऊर्जावान बनाने में पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अहम भूमिका निभाई थी। उन्हीं के प्रयासों द्वारा वर्ष 2003 से प्रवासी भारतीय दिवस समारोह शुरू हुआ। प्रवासी भारतीयों द्वारा स्वदेश धन भेजने से जिस तरह बड़ी मात्र में विदेशी मुद्रा भारत आती है, वह सालाना प्राप्त होने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआइ) की राशि से भी अधिक होती है। यह एक ऐसा बड़ा कारण भी है जिससे कोरोना काल में भारत का विदेशी मुद्रा भंडार लगातार बढ़ता हुआ दिखाई दिया है। रिजर्व बैंक के अनुसार देश का विदेशी मुद्रा भंडार 637 अरब डालर से अधिक हो गया है। दुनिया के करीब 200 देशों में रह रहे प्रवासी भारतीय देश की महान पूंजी हैं। विश्व के समक्ष भारत का चमकता हुआ चेहरा हैं। ये विश्व मंच पर राष्ट्रीय हितों के हिमायती भी हैं।

जिस तरह प्रवासी भारतीय राजनेताओं और उद्यमियों ने भारत के साथ सहयोग के सूत्र आगे बढ़ाए हैं, उससे भी प्रवासी भारतीयों द्वारा स्वदेश की ओर धन प्रेषण और स्वदेश के साथ मैत्री में लगातार वृद्धि हुई है। ऐसे प्रभावी राजनेताओं में अमेरिका की पहली महिला और पहली अश्वेत उपराष्ट्रपति कमला हैरिस, मारीशस में प्रविंद जगन्नाथ, राजकेश्वर पुरयाग, अनिरुद्ध जगन्नाथ, नवीनचंद्र राम गुलाम, गुयाना में भरत जगदेव, डोनाल्ड रविंद्र नाथ रामोतार, सूरीनाम में चंद्रिका प्रसाद संतोखी, दक्षिण अफ्रीका में अहमद कथराडा, सिंगापुर में प्रो. एस. जयकुमार, न्यूजीलैंड में प्रियंका राधाकृष्णन, डा. आनंद सत्यानंद, त्रिनिदाद एवं टोबैगो में कमला प्रसाद बिसेसर, कुराकाओ में यूजीन रघुनाथ, ब्रिटेन में ऋषि सुनक आदि नाम उभरकर दिखाई दे रहे हैं। इसी तरह आइटी, कंप्यूटर, मैनेजमेंट, बैंकिंग, वित्त आदि क्षेत्रों में दुनिया में ऊंचाइयों पर दिखाई दे रहे सुंदर पिचाई, सत्य नडेला, शांतनु नारायण, दिनेश पालीवाल और अजय बंगा आदि ने भारत के साथ स्नेह के सूत्र मजबूत बनाए हैं।

यदि हम चाहते हैं कि प्रवासी भारतीय देश को मजबूत बनाने में अपनी सहभागिता और अधिक बढ़ाएं तो हमें भी उनके दुख-दर्द में अधिक सहभागी बनना पड़ेगा। उनके साथ सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाना होगा। जिस तरह पिछले वर्ष कोरोना की चुनौतियों से परेशान प्रवासियों की घर वापसी के लिए सरकार ने वंदे भारत मिशन चलाया और 45 लाख प्रवासी भारतीयों को वापस लाया गया, उससे उनके मन में देश के लिए और अधिक आत्मीयता बढ़ी है। हालांकि अभी भी हमें प्रवासियों से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के निराकरण में अहम भूमिका निभानी होगी। वस्तुत: दुनिया के सभी प्रवासी भारतीय बहुत धनी नहीं हैं। खासतौर से विभिन्न खाड़ी देशों में लाखों कुशल-अकुशल भारतीय श्रमिक इस बात से त्रस्त हैं कि वहां पर उन्हें न्यूनतम वेतन और जीवन के लिए जरूरी उपयुक्त सुविधाएं नहीं मिल पा रही हैं। उनकी वीजा संबंधी मुश्किलों को कम करने में भी मदद करनी होगी। विदेश में रोजगार की प्रक्रियाओं को सरल और पारदर्शी बनाने पर जोर देना होगा, ताकि भारतीय कामगारों को बेईमान बिचौलियों और शोषक रोजगारदाताओं से बचाया जा सके। कुछ देशों में भारतीय कामगारों को अभी भी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

प्रवासी भारतीयों को भारत में पर्यटन के लिए उत्साहित करने पर अधिक ध्यान देना होगा, ताकि वे स्वदेश के प्रति अपनी निकटता बढ़ा सकें। हम उम्मीद करें कि जिस तरह प्रवासी चीनियों ने तकरीबन तीन दशक पहले अपनी कमाई हुई दौलत चीन में लगाकर चीन की चमकीली तस्वीर बनाने और उसे समृद्ध करने में अहम अहम भूमिका निभाई है, वैसी ही भूमिका अब प्रवासी भारतीयों की होगी। इसी भूमिका को देखते हुए भारतीय प्रवासी अपने ज्ञान और कौशल की शक्ति से भारतीय अर्थव्यवस्था और भारतीय समाज को आगे बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान देने की दिशा में सक्रिय हैं।

जनसत्ता

Date:24-12-21

जवाबदेही और सुशासन

सुशील कुमार सिंह

मानव सभ्यता की तरह सुशासन का विकास भी इसके साहित्य, इतिहास और दर्शन में निहित रहा है। गौरतलब है कि मानव, प्रबंध और शासन का मुख्य केंद्र बिंदु है। शासन चलाने वाली सरकारें इन्हीं मानव सभ्यता को ध्यान में रख कर अपनी सुशासनिक गतिविधियों को अंजाम देती हैं। यह इनकी जिम्मेदारी भी है और जवाबदेही भी। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण समाज में संसाधनों और सेवाओं का न्यायपूर्ण वितरण सभी की समृद्धि का मूल मंत्र है। गांधी दर्शन से पैदा तमाम विचार यह संदर्भित करते हैं कि सरकार को अपनी भूमिका में कितना बने रहने की आवश्यकता है। सर्वोदय की कसौटी पर सुशासन का पैमाना कहीं अधिक सारगर्भित है, जहां लोक प्रवर्धित विचारधारा को अवसर मिलता है। वैसे नागरिकों के प्रति जवाबदेही लोकतांत्रिक शासन का बुनियादी सिद्धांत है। जो सरकारें नागरिक की हितधारक होती हैं, वही सुशासन की कसौटी पर खरी और जवाबदेही में अव्वल होती हैं। जीवन जब आर्थिक कठिनाइयों से दो-चार होता है, तब सरकार की जवाबदेही बढ़ जाती है। गौरतलब है कि थोक महंगाई दर बीते एक साल की तुलना में अपने उच्चत्तम स्तर पर है। आंकड़े बताते हैं कि दिसंबर 2020 में थोक महंगाई दर 1.95 फीसद की बढ़त लिए हुई थी, जो दिसंबर 2021 में ऊंची छलांग के साथ 14.23 फीसद पर पहुंच चुकी है। खुदरा महंगाई के मामले में यह फीसद 4.91 है। जाहिर है कि महंगाई का यह स्वरूप सरकार की जवाबदेही और सुशासन दोनों को चुनौती दे रहा है।

वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय ने बीते 14 दिसंबर को कहा था कि मुद्रा स्फीति की दर मुख्यत: खनिज तेल, कच्चा तेल, गैस, खाद्य उत्पाद और मूल धातुओं आदि की कीमतें पिछले साल के इसी माह की तुलना में बढ़ी हैं। खाद्य सूचकांक के मामले में भी पिछले महीने की 3.06 फीसद के अनुपात में यह दोगुना से अधिक 6.70 फीसद पर पहुंच गई है। सवाल है कि इसे नियति मान लें या सरकार की नीतियों में खोट।

जवाबदेही का सिद्धांत सभ्यता जितना ही पुराना है। यह एक ऐसा दायित्व है, जिसमें कार्य को अक्षरश: पूरा करना शामिल है। सरकार के समूचे कामकाज के लिए वित्तीय जवाबदेही बेहद महत्त्वपूर्ण है। संसद में पारित होने वाले बजट और उसके खर्च से होने वाले विकास के प्रति सुशासनिक दृष्टिकोण इस जवाबदेही को पूर्ण करता है। देश और नागरिक को क्या चाहिए, इसकी समझ उसी जवाबदेही का हिस्सा है। बेरोजगारी, गरीबी, शिक्षा में कठिनाई, भ्रष्टाचार और विकास में कमी जैसी तमाम समस्याओं का निपटारा समय से न हो तो कठिनाई निरंतर बनी रहती है। हालांकि शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा, सड़क, बिजली, पानी आदि सुविधाओं में बदलाव आया है, पर जिम्मेदारी का परिप्रेक्ष्य यहां भी रोज चुनौती बना रहता है। समावेशी विकास और सतत विकास तीन दशक से चल रहा है, फिर भी गरीबी और भुखमरी जाने का नाम नहीं ले रही है।

भारत ने ई-शासन को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं, लेकिन केंद्र, राज्य, जिला और स्थानीय शासन के बीच जुड़ाव से संबंधित जटिलताएं अब भी मौजूद हैं। संयुक्त राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक मामलों के विभाग (यूएनडीईएसए) द्वारा 2020 के ई-शासन सर्वेक्षण में भारत को सौवां स्थान दिया है। पड़ताल बताती है कि ई-

शासन विकास सूचकांक के मामले में भारत 2018 में 96वें स्थान पर था। गणना बताती है कि भारत ने 2014 के मुकाबले 2018 में बाईस स्थानों का उछाल लिया, मगर 2020 में यह सौवें स्थान पर चली गई। ई-शासन पारदर्शिता का एक बेहतर उपाय है, साथ ही एक ऐसा उपकरण, जिसमें कार्य संचालन की गति को तीव्रता मिलती है। देश की ढाई लाख पंचायतों में अभी आधी संख्या ई-कनेक्टिविटी से वंचित है। लोकतांत्रिक देश में लोक जुड़ाव और ई-भागीदारी कम होने का मतलब तय जवाबदेही के साथ सामाजिक बदलाव में रुकावट और सुशासन के लिए बड़ी चुनौती है।

भारत में मध्यवर्ग की स्थिति रोज कुआं खोदने और पानी पीने वाली रही है। ऐसे में कोरोना के शिकार लोगों के परिवार की आजीविका आज किस स्थिति में है और इसके प्रति कौन जवाबदेह होगा, इनके लिए शासन ने क्या कदम उठाया, यह अब भी स्पष्ट नहीं है। कोरोना त्रासदी की कड़वी सच्चाई यह है कि स्वास्थ और अर्थव्यवस्था दोनों बेपटरी हुए। एक अनुमान के मुताबिक पूर्णबंदी के कारण कम से कम तेईस करोड़ भारतीय गरीबी रेखा के नीचे पहुंच गए हैं। विश्व असमानता रिपोर्ट भी यह बताती है कि भारत में पचास फीसद आबादी की कमाई इस वर्ष घटी है। रिपोर्ट का लब्बोलुआब यह भी है कि अंग्रेजों के राज में 1858 से 1947 के बीच भारत में असमानता अधिक थी। उस दौरान दस फीसद लोगों का पचास फीसद आमदनी पर कब्जा था। हालांकि वह दौर औपनिवेशिक सत्ता का था और लोकतंत्र की अहमियत और महत्त्व से अनंत दूरी लिए हुए था। स्वतंत्रता के बाद 15 मार्च, 1950 को प्रथम पंचवर्षीय योजना शुरू हुई और असमानता का आंकड़ा घट कर पैंतीस फीसद पर आ गया। उदारीकरण का दौर आते-आते स्थितियां कुछ और बदलीं। विनियमन में ढील और उदारीकरण की नीतियों से अमीरों की आय बढ़ी। इसी उदारीकरण से शीर्ष एक फीसद को सबसे अधिक फायदा हुआ। रही बात मध्य और निम्नवर्ग की, तो यहां भी इनकी दशा में सुधार की रफ्तार कहीं अधिक सुस्त रही। जाहिर है, यह सुस्ती गरीबी को बढ़ाती है। विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 मद्देनजर ये बातें कहीं गई हैं, जिसमें दुनिया के सौ जाने-माने अर्थशास्त्री अध्ययन करते हैं।

जवाबदेही केवल सरकार की नहीं होती, इसमें जनता भी शामिल है। मौजूदा समय में लोकतंत्र में हिस्सेदारी को लेकर जनता को भी कुछ और कदम बढ़ाना चाहिए। वोट फीसद कम बने रहने की स्थिति यह बताती है कि जनता का एक वर्ग अपने ही खिलाफ काम कर रहा है। कौन, किसके प्रति जिम्मेदार है यह कोई यक्ष प्रश्न नहीं है। उनकी किस बात के लिए जवाबदेही है इससे भी लोग अनजान नहीं हैं। अगर किसी चीज की कमी है तो अपने दायित्व और जवाबदेही पर खरे उतरने की। चुनाव आयोग लोकतंत्र का संरक्षक है और देश में चुनाव एक लोकतांत्रिक महोत्सव है। वोटर आइडी को आधार से लिंक किए जाने वाले कानून से यह कह सकते हैं कि सरकार चुनाव आयोग के माध्यम से फर्जी मतदान रोकने को लेकर अपनी जवाबदेही पूरी करने का प्रयास कर रही है। गौरतलब है कि चुनाव आयोग की मांग पर यह फैसला किया गया। इसके अलावा भी कई संदर्भ, मसलन अब मतदाता सूची में दर्ज होने के लिए साल में चार तारीखें होंगी। अब तक यह एक जनवरी तय थी। जाहिर है एक जनवरी तक जिसकी उम्र अठारह वर्ष है, वह मतदाता के तौर पर पंजीकृत किया जाता था और जो दो जनवरी को उम्र पूरी करता था, उसे एक साल का इंतजार करना पड़ता था।

सुशासन लोक विकास की कुंजी है। जन भागीदारी के साथ पारदर्शिता, दायित्व और जवाबदेही का अच्छा उदाहरण है। 24 जुलाई, 1991 के उदारीकरण के बाद देश में कई सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हुए और सरकार अपनी जवाबदेही को लेकर चौकन्नी भी हुई। नतीजन, जनता को सामाजिक-आर्थिक न्याय के साथ तमाम अधिकार प्रदान किए गए। सूचना का अधिकार 2005 सरकार की जवाबदेही और सुशासन की दृष्टि से उठाया गया एक बेहतर कदम है। इसी जवाबदेही को देखते हुए सिटीजन चार्टर, खाद्य सुरक्षा अधिनियम, शिक्षा का अधिकार, लोकपाल आयुक्त समेत कई विषय फलक पर

आए। फिलहाल मानव सभ्यता और सरकार की जवाबदेही का ताना-बाना एक अनवरत प्रक्रिया है। यह एक-दूसरे के लिए चुनौती नहीं, बल्कि पूरक है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:24-12-21

चिंता में डालता हंगामा

संपादकीय

संसद का शीतकालीन सत्र हंगामेदार रहा और तय समय से एक दिन पहले समाप्त हो गया। शीतकालीन सत्र 29 नवम्बर से शुरू हुआ था और इसे 23 दिसम्बर तक चलना था। बुधवार की सुबह लोक सभा में अध्यक्ष ओम बिरला और राज्य सभा में सभापति एम वेंकैया नायडू ने कार्यवाही शुरू होते ही अपने-अपने संक्षिप्त वक्तव्यों के बाद बिना किसी विधायी कामकाज के सदन की कार्यवाही अनिश्चितकाल के लिए स्थगित कर दी। सत्र के दौरान विपक्ष ने लखीमपुर खीरी और अन्य मुद्दों पर दोनों सदनों में हंगामा किया।

हंगामे की हालत यह थी कि पीठासीन अधिकारी पूरे समय व्यवस्था बनाए रखने आग्रह करते रहे और सत्ता और विपक्ष में कोई सहमति न बन सकी। बार-बार के व्यवधान और हंगामे के कारण लोक सभा में 82 प्रतिशत और राज्य सभा में केवल 48 प्रतिशत काम ही हो सका। हंगामे के कारण राज्य सभा के 50 घंटे तो लोक सभा के 19 घंटे बर्बाद हुए यानी दोनों सदन अपनी क्षमता से बहुत कम काम कर पाए। अलबत्ता, तीन कृषि कानूनों की वापसी और चुनाव सुधार विधेयक पारित करा लेना सरकार की बड़ी उपलब्धि रही। वैसे सत्र के दौरान दोनों सदनों में 11 विधेयक पारित किए गए। अध्यादेश के स्थान पर लाए गए तीन महत्वपूर्ण विधेयक भी पारित हुए। लोक सभा सत्र की शुरुआत सकारात्मक रही; जब सरकार ने पहले दिन ही तीनों विवादास्पद कृषि कानून वापस ले लिये, लेकिन राज्य सभा में पहले ही दिन विपक्ष के 12 सदस्यों, जिन्हें मानसून सत्र में उनके आचरण के लिए निलंबित किया गया था, को शीतकालीन सत्र के लिए भी निलंबित रखते हुए विपक्ष से टकराव मोल ले लिया। इसके बाद को उच्च सदन में इन सदस्यों के निलंबन की वापसी के लिए हर दिन हंगामा हुआ, लेकिन सत्ता पक्ष इन सदस्यों द्वारा अपने आचरण के लिए माफी मांगे जाने पर अड़ा रहा। विपक्ष का कहना रहा कि इनने कुछ गलत नहीं किया तो माफी किस बात की! गृह राज्य मंत्री अजय मिश्र के इस्तीफे की मांग को लेकर भी जोरदार हंगामा रहा। उच्च सदन में सत्र समापन से दो रोज पहले टीएमसी के नेता डेरेक ओ ब्रायन को उनके आचरण के लिए निलंबित किया गया। बहरहाल, संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा गैर-जिम्मेदाराना रवैया, हंगामा और स्थगन का चलन किसी भी लिहाज से उचित नहीं है।